International Journal of Sanskrit Research 2021; 7(6): 102-104

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2021; 7(6): 102-104
© 2021 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: xx-09-2021
Accepted: xx-10-2021

डॉ. शिक्षा सेमवाल
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उत्तरकाशी, उत्तराखंड, भारत

Corresponding Author:
डॉ. शिक्षा सेमवाल
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उत्तरकाशी, उत्तराखंड, भारत

मायाः शान्तिदेव प्रणीत प्रज्ञापारमिता एवं गौडपादकारिका के प्रकाश में

डॉ. शिक्षा सेमवाल

सारांश
शान्तिदेव प्रणीत प्रज्ञापारमिता तथा गौडपादकारिका दर्शन की दो भिन्न भिन्न विधाओं के ग्रन्थ हैं। परन्तु दोनों ग्रन्थों का अध्ययन करने पर ऐसे कई पारिभाषिक शब्द प्राप्त होते हैं, जिनका प्रयोग दोनों ने प्रचुर मात्रा में किया है। ऐसा ही एक पारिभाषिक शब्द है – माया। प्रज्ञापारमिताकार ने 13 श्लोकों में तथा गौडपादकारिकाकार ने आगम प्रकरण में 3, वैतथ्य में 1, अद्वैत प्रकरण में 6 तथा अलातशान्तिप्रकरण में 5 स्थानों पर माया शब्द का प्रयोग किया है। ऐसे में प्रश्न उठता है कि क्या दोनों ग्रन्थकारों के द्वारा प्रयुक्त समान शब्द एक ही अर्थ में लिया गया है, अथवा शब्दात्मक साम्य होने के बावजूद दोनों में अन्तर है। इसी का विवेचन प्रस्तुत शोधपत्र में किया गया है।

कूटशब्दः माया, जगत्, सत्ता, अद्वैत, शून्य

प्रस्तावना
सृष्टि की उत्पत्ति से सम्बन्धित प्रश्न प्राचीन काल से ही मानव के चिन्तन का विषय बनते आ रहे हैं। विश्व के विविध क्षेत्रों में ऋग्वैदिक काल से लेकर वर्तमान युग तक मानव ने अपनी मेधा के अनुसार इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास किया है। प्राचीन काल में दर्शन के अन्तर्गत इस प्रश्न का उत्तर चिन्तन के माध्यम से खोजा जाता था, परन्तु वर्तमान समय में यह विज्ञान का विषय बन चुका है। वैदिक सूक्तों से लेकर वर्तमान काल में बिग बैंग तक की इस प्रश्न की यात्रा कई सोपानों से होकर गुजरी है।

इस प्रश्न के वैज्ञानिक पहलू को यदि छोड़ दिया जाये तो भारत में आदि काल से ही यह प्रश्न दर्शन का विषय रहा है। सभी भारतीय दर्शनों ने सृष्टि के मूल कारण की खोज करने में ही अधिकांश ऊर्जा व्यय की है तथा इसको विविध रूपों में व्याख्यायित किया है। सृष्टि की उत्पत्ति के मूल कारण के आधार पर भारतीय दर्शनों को चार भागों में बांटा जा सकता है[1]।

- कुछ दर्शनों का मानना है कि सृष्टि का मूल कारण एक है, जो कि अनेक रूपों में परिवर्तित हो जाता है तथा सृष्टि का निर्माण करता है। यह परिवर्तन उसी प्रकार है, जैसे कि सुवर्ण से विविध आभूषणों का निर्माण। सुवर्ण एक है जिससे कि अनेक आभूषण बनाये जा सकते हैं। परन्तु सभी आभूषणों की उत्पत्ति में मूल कारण वह एक ही रहेगा। सृष्टि के निर्माण से सम्बन्धित इस प्रकार का मत वल्लभाचार्य का है।
- कुछ दर्शनों का मत है कि सृष्टि का मूल कारण वस्तुतः एक ही है जो कि विविध रूपों में भासित होता है। यह वास्तविक परिवर्तन नहीं है अपितु भ्रम मात्र है। इस मत का प्रणयन अद्वैत वेदान्त करता है।
- तृतीय मत जगत् को उसी रूप में देखता है, जिस रूप में वह वास्तव में विद्यमान है। तथा सृष्टि का कोई एक कारण स्वीकार नहीं करता है। उसके अनुसार अनेक कारणों से अनेक कार्यों की उत्पत्ति हुई है। विविधता से युक्त इस संसार में प्रत्येक वस्तु अपने आप में विलक्षण है जो कि कारणों की भिन्नता को स्पष्ट करने के लिये पर्याप्त है। इसके अन्तर्गत न्याय, वैशेषिक आदि समस्त द्वैतवादी दर्शनों का अन्तर्भाव हो जाता है।
- चतुर्थ मत के अनुसार सृष्टि का कारण न तो एक है और न ही अनेक। वस्तुतः संसार की उत्पत्ति संभव ही नहीं है। इसके अन्तर्गत शून्यवादी बौद्ध का अन्तर्भाव होता है।

[1] प्रो0 वी0 एन0 झा महोदय की दर्शन की कक्षाओं से साभार गृहीत।

उपर्युक्त चार मतों का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि प्रथम तथा तृतीय मत बाह्य जगत् की सत्ता को उसी रूप में स्वीकार करते हैं जिस रूप में वह इन्द्रियों का विषय बनता है। परन्तु द्वितीय तथा चतुर्थ मत किंचित् भिन्न मत रखते हैं। उनके अनुसार बाह्य जगत का वास्तव में कोई अस्तित्व ही नहीं है। बाह्य जगत् के प्रति अस्वीकृति का यह भाव इन दोनों मतों को एक श्रेणी में ला खड़ा करता है। दोनों मतों के समक्ष प्रत्यक्ष ही इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष का विषय बन रहे विषयों का खण्डन अत्यन्त चुनौती पूर्ण विषय है। क्योंकि बिना बाह्य पदार्थों का खण्डन किये अद्वैत तथा शून्य दोनों की ही सिद्धि करना संभव नहीं है। अद्वैतसिद्धिकार के शब्दों में –

> अद्वैतसिद्धेर्द्वैतमिथ्यात्वपूर्वकत्वात् द्वैतमिथ्यात्वमेव प्रथममुपपादनीयम्[2]।।

अर्थात अद्वैत की सिद्धि द्वैत के मिथ्यात्व के द्वारा ही संभव है। अतः सर्वप्रथम द्वैत का मिथ्यात्व ही प्रतिपादनीय है।

शान्तिदेव प्रणीत प्रज्ञापारमिता तथा गौडपादकारिका दोनों ग्रन्थों में इस समस्या के समाधान के लिये समान पद्धति का प्रयोग किया गया है। दोनों ही ग्रन्थों में माया नामक एक शक्ति की कल्पना की गयी है, जिसके माध्यम से समस्त समस्या का स्वयमेव समाधन निकल आता है। अतः इन दोनों दर्शनों की कार्यप्रणाली को समझने से पूर्व सर्वप्रथम माया के स्वरूप को समझना आवश्यक है।

माया को अद्वैत वेदान्त में ब्रह्म की एक शक्ति के रूप में कल्पित किया गया है। दोनों दर्शनों में जगत् के मिथ्यात्व को प्रतिपादित करने में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। इसे अज्ञान या अविद्या भी कहा जा सकता है। जिस प्रकार मन्त्री बन जाने पर किसी व्यक्ति के पास राज्य सम्बन्धी शक्तियां स्वयमेव आ जाती हैं, परन्तु उन शक्तियों का मन्त्री से पृथक् कोई अस्तित्व नहीं होता है। उसी प्रकार ब्रह्म की यह शक्ति ब्रह्म से पृथक् अस्तित्व नहीं रखती, परन्तु संसार सम्बन्धी समस्त कार्य इसी के द्वारा निष्पादित किये जाते हैं[3]।

गौडपाद ने अपने ग्रन्थ में माया के स्वरूप को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त नहीं किया है तथापि उन्होंने समस्त जड़ जगत् की उत्पत्ति का सम्पूर्ण श्रेय माया को ही दिया है। उनके अनुसार समस्त बाह्यप्रपंच माया से ही उत्पन्न है। उसकी पारमार्थिक रूप से कोई सत्ता विद्यमान नहीं है[4]। उन्होंने माया की कल्पना आत्मा की एक शक्ति के रूप में की है जो कि सृजन की शक्ति रखती है। उनके अनुसार जितने भी बाह्य तथा आध्यात्मिक पदार्थ हैं वह अन्य कोई नहीं अपितु देव ही है।[5] शंकराचार्य यहां पर देव शब्द आत्मा के अर्थ में प्रयुक्त मानते हैं। [6]

जगत् के मिथ्यात्व को प्रतिपादित करने के लिये स्वप्न का उदाहरण लिया जा सकता है। जिस प्रकार स्वप्न में देखी गयी वस्तुओं को व्यक्ति अज्ञानतावश वास्तविक समझ लेता है, परन्तु निद्रा के भंग होते ही उसे स्वप्न के मिथ्यात्व का ज्ञान हो जाता है। उसी प्रकार संसार में विद्यमान समस्त पदार्थ चाहे वह शरीर ही क्यों न हो स्वप्नवत् मिथ्या ही हैं[7]। गौडपाद इस मिथ्यात्व की प्रतीति का समस्त श्रेय माया को ही प्रदान करते हैं [8]। माया की शक्ति के द्वारा ही अद्वैत द्वैत के रूप में भासित होने लगता है[9]। अपने कथन की पुष्टि गौडपाद आगम प्रमाण के द्वारा करने का प्रयास करते हैं तथा वैदिक साहित्य से विविध उदाहरण प्रस्तुत करते हैं जहां पर द्वैत का खण्डन कर अद्वैत का प्रतिपादन किया गया है।[10]

गौडपाद का मानना है कि जगत् के दो रूप संभव हैं

- बाह्यजगत् सत् है।
- असत् है।

जो भी वस्तु सत् है उसकी वास्तविक उत्पत्ति संभव नहीं है क्योंकि जिसकी भी उत्पत्ति होगी उसका विनाश अवश्यंभावी है। अतः जिस क्षण कोई पदार्थ उत्पन्न होता है उसी क्षण उसका सत् स्वरूप समाप्त हो जायेगा। बाह्य जगत् में दिखलायी देने वाले समस्त पदार्थ सत् नहीं हो सकते क्योंकि उनकी उत्पत्ति स्पष्ट ही देखी जा सकती है[11]। यहां पर प्रश्न उठता है कि जब समस्त संसार असत् है तो वह किस कारण से दर्शन का विषय बनता है? इस समस्या का समाधन माया के माध्यम से किया गया है। उदाहरणार्थ जिस प्रकार रज्जु में सर्प की उत्पत्ति वास्तविक नहीं होती अपितु केवल दिखलाई देती है, उसी प्रकार ब्रह्म भी माया के द्वारा जगत् के रूप में भासित होता है। उसी के कारण व्यावहारिक तल पर संसार विविध रूपों में दिखलाई देता है।

जगत् को असत् भी नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि यदि वह असत् होता तो उसकी उत्पत्ति वस्तुतः तो दूर माया से भी संभव नहीं थी। गौडपाद इसमें वन्ध्यापुत्र को उदाहरण के रूप में ग्रहण करते हैं। जिस प्रकार वन्ध्यासुत का कोई अस्तित्व न होने के कारण उसे किसी भी प्रकार से उत्पन्न नहीं किया जा सकता है उसी प्रकार यदि जगत असत् है तो माया के द्वारा भी उसकी उत्पत्ति संभव नहीं है[12]।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मायाप्रसूत जगत न तो सत की श्रेणी में आता है और न ही असत् की श्रेणी में इसका अन्तर्भाव किया जा सकता है। अतः इसका स्वरूप अनिर्वचनीय ही कहना होगा।

माया की कार्यप्रणाली स्वप्न के समान है। जिस प्रकार स्वप्नावस्था में व्यक्ति अपने चित्त में अनेक प्रकार के दृश्यों तथा व्यक्तियों को देख लेता है, जिनका वास्तविक धरातल पर उस व्यक्ति से भिन्न कोई अस्तित्व नहीं होता, उसी प्रकार माया व्यावहारिक तल पर वस्तुओं का निर्माण करती है[13]। जाग्रदवस्था तथा स्वप्नावस्था में अन्तर केवल इतना है कि स्वप्नावस्था अल्पकालिक माया से उत्पन्न होती है, जिसका शीघ्र ही विनाश हो जाता है, परन्तु जाग्रदवस्था अनादि माया से उद्भूत है, जिसका निवारण कठिनता से होता है। माया के द्वारा सृष्टि का निर्माण किसी ऐन्द्रजालिक द्वारा दिखलाये गये खेल के समान है। ऐन्द्रजालिक अपनी कला के प्रभाव से किसी भी जीव को उत्पन्न कर देता है, जो कि वास्तविक नहीं होता है। परन्तु दर्शकों को उसके द्वारा किये गये समस्त क्रियाकलाप वास्तविक प्रतीत होते हैं। यदि दर्शक को उस कला की वास्तविकता ज्ञात हो जाये तो वह स्वयमेव उससे निवृत्त हो जाता है। उसी प्रकार जगत् भी है। परन्तु यहां पर प्रश्न उठता है कि ऐन्द्रजालिक तथा दर्शक में भेद होने के कारण भ्रान्ति संभव है परन्तु गौडपाद के मत में द्वैत का अभाव होने के कारण ब्रह्म स्वयं ही कैसे माया के प्रभाव में आ जाता है? गौडपाद के अनुसार ब्रह्म संसार के मिथ्यात्व को जानते हुए भी स्वयं ही इससे सम्मोहित हो जाता है[14] यह सम्मोहन उसी प्रकार है जिस प्रकार एक मूर्तिकार स्वयं स्त्रीमूर्ति का निर्माण करके उसके मिथ्यात्व को जानते हुए भी

---

[2] अद्वैतसिद्धि, पृ0 6 ; अद्वैतवेदान्त में मायावाद, भूमिका, पृ0 सं0 3

[3] Maya in physics, page no. 241

[4] मायामात्रमिदं द्वैतं अद्वैतं परमार्थतः।। गौ. का. 1.17

[5] कल्पयत्यात्मनात्मानमात्मा देवः स्वमायया। गौ. का. 2.12

[6] स्वयं स्वमायया स्वमात्मानमात्मा देव आत्मन्येव वक्ष्यमाणं भेदाकारं कल्पयति। शां0 भा0 पृ0 93

[7] यथा स्वप्ने द्वयाभासं स्पन्दे मायया मनः।
तथा जाग्रद्द्वयाभासं स्पन्दते मायया मनः।।गौ. का. 3.29

[8] संघाताः स्वप्नवत्सर्वे आत्ममायाविसर्जिताः।। गौ. का. 3.10

[9] मायया भिद्यते ह्येतन्नान्यथाजं कथंचन।। गौ. का. 3.19

[10] अजायमानो बहुधा मायया जायते तु सः। गौ, का. 3.24

[11] सतो हि मायया जन्म युज्यते न तु तत्वतः।
तत्वतो जायते यस्य जातं तस्य हि जायते।। गौ. का. 3.27

[12] असतो मायया जन्म तत्वतो नैव युज्यते।
बन्ध्यापुत्रो न तत्वेन मायया वापि जायते।। गौ. का. 3.28

[13] यथा स्वप्ने द्वयाभासंचित्तं चलति मायया।
तथा जाग्रद्द्वयाभासं चित्तं चलति मायया।। गौ0 का0 4.61

[14] मायैषा तस्य देवस्य यया सम्मोहितः स्वयम्।। मा0 का0 2.19

उससे स्वयं ही सम्मोहित हो जाता है[15]। इसप्रकार गौडपाद समस्त व्यावहारिक जगत का मूल कारण माया को बतलाते हुए इसकी समाप्ति को ही अद्वैत की प्राप्ति का एकमात्र मार्ग सिद्ध करते हैं।

गौडपाद के ही समान शान्तिदेव ने भी अपने ग्रन्थ बोधिचर्यावतार के नवम अध्याय प्रज्ञापारमिता में माया का लगभग तेरह कारिकाओं में प्रयोग किया है। शान्तिदेव के अनुसार सामान्य जन वस्तुओं को जिस रूप में देख लेते हैं उसे तत्वतः वैसा ही मान लेते हैं[16]। परन्तु वह वास्तव में वस्तुओं का संवृत रूप होता है, परमार्थ तत्व को बुद्धि का विषय नहीं बनाया जा सकता है। वह माया ही है जो कि संवृत जगत् का वास्तविक जगत् के रूप में आभास करवाती है। अतः कहा जा सकता है कि दृश्यमान जगत्, जो कि वास्तविक नहीं है उसको वास्तविक समझ लेना ही माया है। जिस प्रकार जादूगर नेत्रों को विभ्रमित करके विविध प्रकार के दृश्य दिखला देता है जो उस समय सत्य प्रतीत होते हैं, परन्तु वास्तव में उनका कोई अस्तित्व नहीं होता है। इसी प्रकार माया भी संवृत सत् की अनुभूति वास्तविक तत्त्व के रूप में करवाती है। संवृत जगत् की प्रतीति साधारण जनों तथा योगियों, दोनों को होती है। परन्तु योगी की दृष्टि में वह असत्य होता है तथा साधारण व्यक्ति उसे बिना किसी संशय के सत्य समझ लेता है। माया के कारण एक ही जगत् को योगी तथा साधारण व्यक्ति भिन्न– भिन्न रूपों में देखते हैं। अतः माया एक ऐसी वृत्ति है जिसके कारण जीव असत्य को सत्य मान बैठता है[17]।

यहां पर प्रश्न उठता है कि यदि यह जगत् वास्तविक नहीं है तो इसकी अनुभूति नित्य नहीं होनी चाहिये। इसपर शान्तिदेव का मानना है कि कोई भी वस्तु यदि दीर्घकाल तक एक ही रूप में दिखलाई दे रही है तो इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वह वास्तविक है। माया के शीघ्र बाध न होने के कारण सामान्य जन जगत् को वास्तविक मान लेता है परन्तु मायामय संसार का अस्तित्व तभी तक रहता है, जब तक कि कारण सामग्री विद्यमान रहती है[18]। प्रज्ञाकरमति ने कारण सामग्री से अविद्या कर्म, तृष्णा स्वभाव वाली सामग्री को ग्रहण किया है।[19] शान्तिदेव का मानना है कि सभी वस्तुएं प्रतिबिम्ब के समान असत् हैं। अविद्या आदि के दीर्घ काल तक बने रहने का तात्पर्य यह नहीं माना जा सकता कि जीव परमार्थ रूप में सत्य है। वस्तुतः जैसे ही माया का बाध होगा जीव के दिखलाई देने वाले स्वरूप का भी बाध हो जायेगा। अविद्या का बाध होना एक जन्म का विषय नहीं है अपितु इसमें कई जन्मों का समय लग सकता है।

शान्तिदेव के अनुसार माया के कई रूप हैं यदि माया एक होती तो उसके द्वारा उत्पन्न होने वाले समस्त कार्य एक समान होने चाहिये थे, परन्तु ऐसा नहीं होता है। संसार में दिखलाई देने वाली प्रत्येक वस्तु दूसरी वस्तु से पूर्णतः भिन्न है। कुछ वस्तुएं जड़ हैं तो कुछ चेतन। दोनों ही माया से उद्भूत हैं अतः कहा जा सकता है कि विविध वस्तुओं की उत्पत्ति के लिये भिन्न – भिन्न प्रकार की माया की आवश्यकता पड़ती है।[20]

पारमार्थिक रूप से समस्त जगत् निःस्वभाव है, परन्तु वह माया ही है जो स्वभाव से रहित इस जगत् में स्वभाव को उत्पन्न करती है। स्वभाव की यह उत्पत्ति ऐन्द्रजालिक द्वारा उत्पन्न की गयी विविध वस्तुओं के समान है।

शान्तिदेव का मानना है कि जो भी वस्तु किसी अन्य के सहयोग से दर्शन का विषय बनती है तथा उसके अभाव में वस्तु का भी अभाव हो जाता है तो उस वस्तु को सत्य नहीं माना जा सकता है। जगत् की समस्त वस्तुओं का यही स्वभाव है। गहनता पूर्वक विचार करने पर सभी वस्तुएं प्रतिबिम्ब के समान असत् सिद्ध होती हैं। अतः जो कुछ भी हेतु अर्थात् कारणों की सहायता से ज्ञान का विषय बनता है वह समस्त पदार्थ मायानिर्मित ही है[21]।

इस प्रकार गौडपाद तथा शान्तिदेव के मतों का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि दोनों मतों में दृश्यमान जगत को वास्तविक समझ लेना ही माया है। दोनों दर्शनों में व्याख्यायित माया की तुलना इन्द्रजाल से की जा सकती है। जिस प्रकार ऐन्द्रजालिक के द्वारा किये गये जादू के उपरान्त दिखलाई देने वाले पदार्थ वास्तविक नहीं होते हैं, उसी प्रकार वास्तविक जगत में जो कुछ भी दिखलाई दे रहा है वह इन्द्रजाल के समान माया जन्य ही है।

दोनों मतों में माया भ्रम का ही एक रूप है, जिसके माध्यम से जगत् के अनुभूत रूप को व्याख्यायित करने का प्रयास दोनों सिद्धान्तों के द्वारा किया जा रहा है। अन्तर केवल इतना है कि अद्वैत वेदान्त में माया जहां ब्रह्म की एक अनिर्वचनीय शक्ति के रूप में विकसित होती है, वहीं बौद्ध दर्शन में ब्रह्म का अभाव होने के कारण माया का स्वरूप अनिर्वचनीय रहता है। वह किसी चेतन विशेष की शक्ति के रूप में परिगणित नहीं होती है।

अद्वैत वेदान्त की माया रज्जु में सर्प के समान है। जिस प्रकार रज्जु में भ्रान्तिवश सर्प की प्रतीति होने लगती है, उसी प्रकार ब्रह्म भी माया के कारण भ्रान्तिवश जगत् के रूप में भासित होने लगता है। अतः कहा जा सकता है कि गौडपाद की माया साधिष्ठान है। परन्तु प्रज्ञापारमिता में निरूपित माया को किसी अधिष्ठान की आवश्यकता नहीं है अपितु वह बिना किसी ब्रह्म रूपी अधिष्ठान के भी जगत् की सृष्टि करने में सक्षम है। महायान बौद्ध दर्शन में किसी स्थायी नित्य तत्व के अभाव में माया को साधिष्ठान मानना संभव नहीं होगा। अतः यहां पर माया की तुलना एक ऐसे इन्द्रजाल से की जा सकती है जिसको दिखलाने वाला न कोई ऐन्द्रजालिक है और न ही उसे प्रदर्शित करने की कोई सामग्री ही उपलब्ध है। इन्द्रजाल स्वयं ही बिना किसी कर्ता के उपस्थित है।

इस प्रकार हालांकि गौडपाद तथा शान्तिदेव द्वारा प्रणीत माया की कार्यप्रणाली समान है, दोनों ने माया को एक ही प्रकार के उदाहरणों के द्वारा सिद्ध करने का प्रयास किया है, परन्तु दोनों की माया के अधिष्ठान में भिन्नता है। अद्वैत में माया ब्रह्मालम्बन पूर्वक है परन्तु शून्यवाद में निरालम्बन है। जिसका मूल कारण दोनों दर्शनों की पूर्वधारणाओं में भिन्नता है।

सन्दर्भ सूची

1. शास्त्री, द्वारकादास (सं.). (1988). शान्तिदेव विरचित बोधिचर्यावतार (प्रज्ञाकरमति विरचित पंजिका टीका सहित). वाराणसी : बौद्धभारती.
2. त्रिपाठी,रामशंकर (सं.). (1998). शान्तिदेव विरचित बोधिचर्यावतार (दलाईलामा के प्रवचन सहित). वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान सारनाथ.
3. सिंह, संघसेन (सं.). (2011). बोधिचर्यावतार. दिल्ली : राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान.
4. गौडपाद. (2010). गौडपादकारिका(शांकरभाष्य सहित). : गोरखपुर : गीताप्रेस.
5. पाण्डेय, शशिकान्त. (2019). अद्वैतवेदान्त में मायावाद. दिल्ली : विद्यानिधि प्रकाशन.
6. Panda NC. Maya in Physics**.** Delhi: Motilal Banarasidas, 2005.

[15] यदा मायास्त्रियां रागः तत्कर्तुरपि जायते। प्र0 पा0 31

[16] लोकेन भावाः दृश्यन्ते कल्प्यन्ते चापि तत्वतः। न तु माया वदित्यत्र विवादो योगिलोकयोः।। प्र0 पा0 5

[17] लोकेन भावाः दृश्यन्ते कल्प्यन्ते चापि तत्वतः। प्र0 पा0 5

[18] यावत् प्रत्ययसामग्री तावत् मायापि वर्तते। प्र0 पा0 10

[20] सपि नानाविधामाया नाना प्रत्ययसंभवा।। प्र0 पा0 12

[21] मायया निर्मितं यच्च हेतुभिर्यच्च निर्मितम्।
आयाति तत् कुतः कुत्र याति चेति निरूप्यताम्।।
यदन्यसन्निधानेन दृष्टं न तदभावतः।
प्रतिबिम्बसमे तस्मिन् कृत्रिमे सत्यता कथम्।। प्र0 पा0 144,145